वीर-विहार मीमांसा

विजयेन्द्रसूरि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीर-विहार मीमांसा

विद्याभूषण विद्यावल्लभ हिन्दीविनोद इतिहासतत्त्वमहोदधि
जैनाचार्य विजयेन्द्रसूरि
सी० एम० ओ० आई० पी०

प्राप्ति-स्थान
काशीनाथ सराक; यशोधर्ममन्दिर,
२ डी० लाइन, दिल्ली क्लाथ मिल्स,
दिल्ली।

वि० सं० २००३] वीर सम्वत् २४७२ [धर्म सं० २४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशक—
श्रीविजयधर्मसूरि-समाधिमन्दिर,
शिवपुरी (ग्वालियर राज्य)।

प्रथमावृत्ति १०००

मूल्य आठ आना

मुद्रक—
अर्जुन प्रिंटिंग प्रेस श्रद्धानन्द बाजार
देहली।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समर्पण

जिनसे बाल्यावस्था में ही विशिष्ट गुणों को प्राप्त किया
था, जिन के आवरण में ये गुण परिपुष्ट हुए,
उसी उपलक्ष में उन्हीं अपने पितृ—
श्रीगोपालदासजी अबरोल तथा मातृश्री
कृपादेवी जी, सनखतरा (जि० स्याल-
कोट, पंजाब) को यह लघु सा
ग्रन्थ सादर समर्पित
है ।

—विजयेन्द्रसूरि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेखक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किंचिद्-वक्तव्य

आज से लगभग ११ वर्ष पूर्व हम ने एक पुस्तिका 'वीरविहार-मीमांसा' गुजराती में प्रकाशित कराई थी। उस में भगवान महावीर-स्वामी के विहार के सम्बन्ध में प्रचलित धारणाओं का संक्षेप से विवेचन किया था और यह बताने का प्रयास किया था कि श्रीमहावीरस्वामी का विहार पश्चिमीदेशों में नहीं हुआ था। इतिहासप्रेमी सज्जनों ने इस का समुचित आदर किया, इस के लिये हम उन सज्जनों का धन्यवाद करते हैं। परन्तु रूढिवादी समाज की रूढि-प्रियता के कारण इस का प्रभाव तो कुछ नहीं हुआ, अपितु कुछ विरोध अवश्य हुआ। इस पर हमें कुछ आश्चर्य नहीं हुआ क्योंकि इतिहास तो प्रगतिशील है, वहां तो रूढि का विचार न होकर तथ्यों पर विचार किया जाता है। इसलिए यदि उस पुस्तिका का इतिहासप्रेमियों में आदर हुआ है तो यही उस पुस्तिका के लिए प्रमाणपत्र है।

कुछ मित्रों ने कई एक कारणों से इस पुस्तिका की द्वितीया-वृत्ति के प्रकाशन के लिए मना किया, कुछ एक मित्रों ने रूढ़िवादियों का पक्ष ले कर इस पुस्तिका की आलोचना की, कई एक ने दूसरों की संचितपूंजी पर पैर जमा कर हमें ललकारा। परन्तु जिस कार्य की साधना में हम रत थे उसी में निरन्तर लगे रहे और इस समय अपने कार्य को जनता के समक्ष उपस्थित कर रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तिका उपर्युक्त पुस्तिका की द्वितीयावृत्ति नहीं है, अपितु यह एक बार पुनः नये सिरे से लिखी गई है। बहुत से अंश इस में बढा दिये गये हैं। विशेषतः श्रीमहावीरस्वामी के छद्मस्थकाल के विहार के स्थानों का निश्चय करने का प्रयत्न किया गया है। यदि सम्भव हुआ तो भविष्य में भगवान के केवलज्ञान के बाद के विहार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थानों पर विचार करेंगे। इस सम्बन्ध में विज्ञपाठकों से हम अनुरोध करेंगे कि यदि इस स्थान-निश्चय में उन्हें कहीं भ्रान्ति अथवा विवादास्पद वस्तु प्रतीत हो तो उस की ओर हमारा ध्यान अवश्य आकृष्ट करें।

अन्त में अपने सांसारिक भतीजे श्रीपूर्णचन्द्र जी अबरोल इन्जीनियर, परमभक्त श्रीधनपतसिंहजी भंसाली, राष्ट्रसेवक श्री गुलाबचन्दजी जैन और श्री बाबू काशीनाथ जी सराक का धन्यवाद किये बिना नहीं रह सकते जिन्होंने इस पुस्तिका के लिखने में किसी न किसी प्रकार से सहायता दी है। इस पुस्तक के प्रकाशन में लाला बाबूमल जैन ने अपने पूज्य लाला हजारीमल के श्रेयोऽर्थ सहायता दी है, और सनखतरा निवासी लाला धर्मचन्द्रजी के सुपुत्र अशोककुमारजी ने द्रव्य-सहायता द्वारा बहुत अधिक उदारता प्रदर्शित की है, इसलिये ये भी धन्यवाद के पात्र हैं। साथ ही श्री विद्यासागर विद्यालंकार को भी नहीं भूल सकता जिन्होंने इस पुस्तिका के लिखने और संवारने में यथाशक्ति सहायता प्रदान की है।

वैशाख शुदि पूर्णिमा,
चिन्तामणिपार्श्वनाथ मन्दिर,
चीराखाना, दिल्ली।
१६ मई, १९४६.
धर्म संवत् २४.

विजयेन्द्रसूरि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

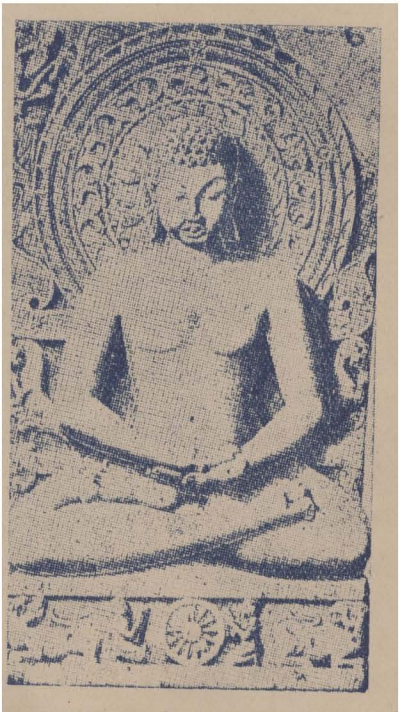

मथुरा की खुदाई में प्राप्त गुप्तकालीन
भगवान् वर्धमान की प्रतिमा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥ अर्हम् ॥

श्रीगुरुदेवविजयधर्मसूरिभ्योनमः

वीर-विहार मीमांसा

लगभग २५४४ वर्ष पूर्व श्रीमहावीरस्वामी का जन्म विदेह देश के क्षत्रियकुण्ड में हुआ था। यह स्थान वैशाली (जिला मुजफ्फरपुर) के समीप था, आजकल वैशाली बसाढ नाम से प्रसिद्ध है जो कि पटना से उत्तर दिशा में २७ मील पर है। इस स्थान के सम्बन्ध में हम ने विस्तृत विवेचन अपने 'वैशाली' नामक ग्रन्थ में किया है। इसी क्षत्रियकुण्ड के बाहर ज्ञातखण्डवन में मार्गशीर्ष वदि १० के दिन चतुर्थ प्रहर में ३० वर्ष की आयु में भगवान ने संसार का त्याग किया था। अनुमानतः साढ़े बारह वर्ष से कुछ ही दिन अधिक छद्मस्थावस्था[1] में रहे, और छद्मस्थावस्था में जिन जिन स्थानों में भगवान ने भ्रमण किया था उस का उल्लेख परिशिष्ट में किया गया है। इस वर्णन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भगवान का विहारक्षेत्र केवल निम्न देशों तक ही सीमित था: विदेह, मल्लदेश, शाक्यदेश, केकयार्द्ध, मगध, अंग, कुणाल (कोशल), लाढ (राढ), वत्स, कलिंग, काशी, भग्ग, शाण्डिल्य।'

परन्तु धीरे धीरे समय परिवर्तन के साथ नयी नयी कल्पनायें सामने आती गई, उन कल्पनाओं के चक्कर में पड़कर सामान्य जनता न केवल शास्त्रों द्वारा वर्णित भगवान के विहारक्षेत्र को भूल गई,

१. केवल ज्ञान होने से पूर्व की अवस्था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपितु भगवान के जन्म-स्थान को भी भूल गई । परिणामतः मूल स्थानों को छोड़ कर काल्पनिक स्थानों को वास्तविक समझा जाने लगा । इस सम्बन्ध में जो जो कल्पनाएं खड़ी की गई उन का हम यहां विवेचन करेंगे तथा सप्रमाण यथाशक्ति समाधान करेंगे, फिर मूल स्थानों को बताने का प्रयत्न करेंगे ।

जैनसमाज में यह धारणा प्रचलित हो चली है कि श्री महावीरस्वामी गुजरात–काठियावाड़ और मारवाड़ में पधारे थे । इस धारणा के आधार पर कुछ एक तीर्थस्थानों के सम्बन्ध में यह प्रचार किया गया कि भगवान ने इन स्थानों में भी विहार किया था । काठियावाड़ में एक नगर वढवाण (शहर) है जिस के निकट भोगवा नदी बहती है, इस स्थान को अस्थिकग्राम मान लिया गया है जहां भगवान ने प्रथम वर्षावास किया था । जैनसाहित्य में इस अस्थिकग्राम के पास वेगवती नाम की एक नदी के बहने का उल्लेख है तथा इसके सम्बन्ध में कहा गया है :

ग्रामोऽयमभवत्पूर्वं वर्धमानोऽभिधानतः ।
नद्यस्ति वेगवत्यत्र पंकिलोभयकूलभूः ॥ ८१ ॥

श्रीत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र पर्व १०, पत्र २१

तस्स य अन्तराविसमनिन्नुन्नयगम्भीरखड्डुविसमप्पवेसा आनाभिमेत्तसुहुमवालुगापडहत्थविसालपुलिणा महल्लचिक्खल्लाणुविद्ध-तुच्छसलिला वेगवई नाम नई ।

श्रीमहावीरचरियम् (गुणचन्द्रविरचित) पत्र १५० ।

यह ध्यान में रखना चाहिये कि इस अस्थिकग्राम का पुराना नाम वर्धमान था । इस वर्धमान के पास जो नदी बहती है उसे उपर्युक्त दोनों उद्धरणों में कीचड़मय तथा ऊंचे नीचे गड्ढों से पूर्ण बताया गया है । वेगवती नदी का यह वर्णन काठियावाड़ की भोगवा से मेल नहीं खाता । भोगवा नदी रेतीली है, कीचड़ आदि ऐसा नहीं होता कि ग्रन्थकारों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को उसे लिपिबद्ध करने की आवश्यकता प्रतीत होती। काठियावाड़ में बहने वाली यह भोगवा या भोगवती वस्तुतः वर्षाकाल में चलने वाला एक नाला है, उस भोगवा की साहित्य में वर्णित वेगवती नदी से समानता नहीं है। इसलिए नदी की समानता से अस्थिकग्राम को काठियावाड़ में मानने का कोई आधार ही नहीं बनता। इस प्रथम वर्षावास से पूर्व भगवान ने जिन स्थानों में विहार किया है उन में से एक भी स्थान ऐसा नहीं है जो काठियावाड़ में पाया जाता हो। क्षत्रियकुण्ड, ज्ञात-खण्डवन, कर्मारग्राम, कोल्लागसन्निवेश, मोराकसन्निवेश, ये सभी स्थान साहित्यकारों ने पूर्व में बताये हैं। इन स्थानों में विहार करने के बाद भगवान ने अस्थिकग्राम (वर्धमान) में वर्षावास किया। यदि भगवान क्षत्रियकुण्ड से चलकर काठियावाड़ के वढवाण शहर की ओर गये होते तो मार्ग में आने वाले मुख्य मुख्य स्थानों के नामों का कहीं तो उल्लेख किया जाता। क्योंकि क्षत्रियकुण्ड से वढवाण तक के एक भी गांव का कोई उल्लेख नहीं प्राप्त होता इसलिए प्रतीत होता है कि काठियावाड़ की ओर भगवान नहीं गये थे।

बौद्ध-साहित्य में महात्मा बुद्ध की राजगृह से कुशीनारा तक की यात्रा में जो स्थान आये थे उनके नाम गिनाये गये हैं। उन स्थानों में हत्थिगाम भी एक स्थान था जो कि वज्जी (विदेह) देश के अन्तर्गत था और वैशाली से भोगनगर तक जाने वाली सड़क के किनारे पर था। सोमवंशी भवगुप्त प्रथम के ताम्रपत्र में जो हस्तिपद-नामक स्थान आया है वह भी सम्भवतः हत्थिग्राम है। इस पर श्री दिनेशचन्द्र सरकार और पी० सी० रथ 'इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली' के भाग २० अंक ३ में पृष्ठ २४१ पर लिखते हैं :

Hastipada is mentioned in a number of records as the original home of some Brahmana families. Its identification is uncertain; but it

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

reminds one of the celebrated Hastigrama near Vaisali (modern Besarh in the Muzaffarpur district,north Bihar).

यही हत्थिगाम सम्भवतः अत्थिकग्राम है । बौद्धग्रन्थों में वर्णित हत्थिगाम और जैनसाहित्य में वर्णित अस्थिकग्राम में थोड़ा सा उच्चारण-भेद है परन्तु दोनों साहित्यों में इसे विदेहदेश के अन्तर्गत तथा वैशाली के निकट होना बताया है। इसलिये 'विहारदर्शन' के लेखक ने भी अपने ग्रन्थ में पृष्ठ २२८ पर वदवाण के आगे लिखा है, "नदी कांठे कृत्रिमतीर्थ"—अर्थात् नदी के किनारे कृत्रिम तीर्थस्थान। वस्तुतः स्थिति भी ऐसी ही है।

प्रथम वर्षावास के बाद दूसरे वर्षावास से पूर्व भगवान ने जिन स्थानों में विहार किया उनमें कनकखल आश्रमपद भी एक है। इसे आबूपर्वत पर स्थित कनखल बताया जाता है। यदि उपर्युक्त धारणा स्वीकार कर ली जाय कि वर्तमान वदवाण ही अस्थिकग्राम है तो भगवान उस स्थान से मारवाड़ में आबूपर्वत स्थित कनखल आश्रम में आये होंगे। विहारक्रम में बताया गया है कि भगवान अस्थिकग्राम से मोराकसन्निवेश गये फिर क्रम से दक्षिणवाचाला, सुवर्णबालुका (नदी) और रुप्यबालुका (नदी) हो कर कनकखल आश्रम पहुँचे। वदवाण से आबूपर्वत की ओर चलने पर इन नामों वाले न तो कोई स्थान ही मिलते हैं और नहीं कोई ऐसी नदी रास्ते में पड़ती है जिन की ओर निर्देश करना ग्रन्थकार को आवश्यक प्रतीत होता हो। इस आश्रम से चल कर भगवान उत्तरवाचाला पहुंचे, वहां से सेयंविया चले गये। आबूपर्वत स्थित कनखल आश्रम से सेयंविया अथवा श्वेतम्बिका लगभग ७०० मील है। परन्तु आवश्यकचूर्णि पूर्वभाग पृष्ठ २७८ पर कहा गया है।

'तस्स य अदूरे सेयंविया नाम नगरी'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् कनकखल आश्रम से सेयंविया निकट है, दूर नहीं। इस से यह निश्चय हो जाता है, भगवान के विहारक्रम में जो कनकखल आश्रम स्थान आया है वह श्वेतम्बिका के निकट होना चाहिये। जब कि निर्दिष्ट मान्यता से वह अत्यन्त दूर है।

भगवान का दूसरा वर्षावास नालन्दा में हुआ था। आबूपर्वत से भगवान के विहार का जो मार्ग बनेगा, सामान्यतः उस रास्ते में गंगा नदी के उत्तर वाले प्रदेश परिगणित न हो सकेंगे। परन्तु विहार का जो उल्लेख प्राप्त है उसके अनुसार भगवान ने गंगा के उत्तर वाले प्रदेश मल्ल में भी विहार किया था। यदि यह मान लिया जाय कि भगवान ने आबूपर्वत से मल्लदेश की ओर विहार किया था, वहां से नालन्दा की ओर, तो गंगानदी के पार करने का कई बार उल्लेख होना चाहिये था। पर विहारक्रम में गंगा पार करने का एक बार ही उल्लेख किया गया है। साथ ही आबू से मल्लदेश को भगवान के जाने की क्या आवश्यकता थी जब कि वे सीधे वहां से राजगृह जा सकते थे।

कनकखल आश्रमपद से चल कर भगवान उत्तरवाचाला गये, फिर क्रम से सेयविया (श्वेतम्बिका), सुरभिपुर, गंगानदी, थूणाक-सन्निवेश, राजगृह और नालन्दा गये। थूणाकसन्निवेश मल्लदेश में था और गंगा के उत्तर में। थूण के सम्बन्ध में निम्न उद्धरणों से प्रकाश पड़ता है।

(i) The Udana (VII, 9) places Sthuna in the country of the Mallas to the north-west of Patna on the right bank of the Gandaki.

Journal of The U. P. His. Socicty. vol. xv, Pt. II, Page 30.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ii) Thuna.....It was in the Kosala country and belonged to the Mallas, and was once visited by the Buddha.

Dictionary of Pali Proper Names. vol. I. Page 1042.

इनका संक्षिप्त आशय यह है कि थूण मल्लदेश में है, पटना के उत्तर-पश्चिम में गण्डकी नदी के दायें किनारे पर है। यह थूणा (कुरुक्षेत्र) से भिन्न स्थान है।

इस वर्णन से यह निश्चय हो जाता है कि भगवान ने दूसरे वर्षावास से पूर्व जिन स्थानों में विहार किया था, उनमें से एक भी स्थान गुजरात, काठियावाड़ अथवा मारवाड़ की ओर नहीं है अपितु वे सब स्थान पूर्व में ही हैं।

नालन्दा में वर्षावास करने के बाद तीसरा वर्षावास श्री वीर-प्रभु ने चम्पा नगरी में किया था। इन दोनों वर्षावासों के बीच कोल्लाग सन्निवेश, सुवर्णखल और ब्राह्मणगांव ये तीन स्थान भगवान के विहार में उल्लिखित हैं। सुवर्णखल को सिरोही के निकट बताया जाता है, पर वह कौन सा गांव है इसका उल्लेख नहीं किया गया। सिरोही से १० मील दूर स्थित ब्राह्मणवाड़ा को ब्राह्मणगांव मान लिया गया है। इस प्रकार भगवान के विहार स्थानों को तो आबूपर्वत के पास मान लिया गया है, परन्तु जितने वर्षावास के स्थान हैं, वे सब पूर्व की ओर मध्यमदेश अथवा प्राचीन आर्यावर्त्त में हैं, उन में दूरी भी बहुत हो जाती है। मान-चित्र को देखने से प्रतीत होता है कि नालन्दा और चम्पा की दूरी लग-भग १०० मील है और यदि जनश्रुति के आधार पर निर्धारित स्थानों को भगवान के विहार में मान लिया जाय तो नालन्दा से सिरोही ८०० मील से भी अधिक है। इस प्रकार नालन्दा से सिरोही और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिरोही से चम्पा लौटने में लगभग १७०० से १८०० मील का मार्ग तय करना पड़ता है। विहार की दृष्टि से यह अन्तर बहुत बड़ा अन्तर हो जाता है।

बिना कारण यह मानने का कुछ अर्थ नहीं है कि सिरोही के निकट का ब्राह्मणवाडा ही ब्राह्मणगांव है जब कि सामान्य बुद्धि से यह अधिक संगत प्रतीत होता है कि नालन्दा से चम्पा १०० मील है और इसी बीच में ही ये तीनों स्थान होंगे।

भगवान ने चौथा चातुर्मास पृष्ठचम्पा (चम्पा के निकट स्थान) में किया और पांचवां भद्दिया में। यह कहा जाता है कि इसी बीच में श्री वीरप्रभु सिद्धाचलगिरि की ओर भी तीर्थयात्रा के लिये गये थे। परन्तु यह एक आश्चर्य का विषय है कि चौथे और पांचवें चातुर्मास के बीच जिन स्थानों में भगवान ने विहार किया था, उन में सिद्धाचलगिरि का नाम नहीं है। इसलिये यह तो असन्दिग्ध है कि इस बीच में भगवान सिद्धाचलगिरि की ओर नहीं गये। परन्तु इसके पक्ष में जो प्रमाण उपस्थित किये जाते हैं उन पर भी एक बार विचार कर लेना उपयुक्त होगा। यह कहा जाता है कि भगवान सिद्धाचलगिरि की ओर तीर्थयात्रा के लिये गये थे, इस की पुष्टि श्री वीरविजय जी के इस पद से होती है।

'नेम विना त्रेवीस प्रभु आव्या विमल गिरींद'

यह पद शत्रुंजयमाहात्म्य के आधार पर रचा गया है, यह ग्रन्थ श्रीधनेश्वरसूरि द्वारा लिखा गया था। इस ग्रन्थ का रचनाकाल विक्रम संवत की तेरहवीं शताब्दि है अथवा मन्त्री वस्तुपाल के समय के बाद का है। उत्तरकाल के एक ग्रन्थ के आधार पर श्रीवीरप्रभु का सिद्धाचलगिरि की ओर जाना सिद्ध किया जाता है। जब कि इस ग्रन्थ से भी प्राचीनकाल के ग्रन्थों में भगवान का जो विहारक्रम दिया गया है उनमें इस का कहीं कोई उल्लेख नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी ओर श्रीवीरप्रभु के विहार के सम्बन्ध में एक प्रमाण यह उपस्थित किया जाता है कि नाणा, दियाणा, नांदिया और ब्राह्मण-वाड़ा में श्रीमहावीरस्वामी — जीवितस्वामी के मन्दिर हैं यह तभी हो सकता है जब कि श्री महावीरस्वामी अपने जीवनकाल में वहां पधारे हों। परन्तु जीवितस्वामी नाम से भ्रम में पड़ने की आवश्यकता नहीं। क्योंकि इस शब्द का प्रयोग आज तक अनेक बार अनेक प्रकार से हुआ है। यह भी सिद्ध नहीं होता कि जीवितस्वामी का मन्दिर श्री वीरप्रभु की विद्यमानता में बनवाया गया, यह निम्नउद्धरणों से स्पष्ट हो जायगा।

१. सुधाकुण्डजीवितस्वामि श्रीशान्तिनाथः
२. जीवन्तस्वामी श्रीऋषभदेवप्रतिमा
३. श्रीजीवितस्वामी त्रिभुवनतिलक : श्रीचन्द्रप्रभः
विविधतीर्थकल्प पृष्ठ ८५ (श्रीजिनविजयजी संपादित)

यदि इन उद्धरणों में 'जीवितस्वामी' अथवा 'जीवन्तस्वामी का मन्दिर' का अर्थ 'प्रभु की विद्यमानता में बनवाया गया मन्दिर' अथवा 'प्रभुकी विद्यमानता में उनकी प्रतिष्ठित मूर्त्ति' ग्रहण किया जाय तो उपर्युक्त तीन तीर्थंकरों के सम्बन्ध में इस अर्थ को कैसे घटायेंगे? उपर्युक्त तीर्थंकर आज से लाखों वर्ष पूर्व हुए थे, तब उन की मूर्ति के निर्माण के समय उनका उपस्थित होना कैसे सम्भव हो सकता है!

इस सम्बन्ध में नीचे के दृष्टान्त भी महत्त्व के हैं :—

१. संवत १५२२ में प्रतिष्ठित की गई मूर्त्ति के ऊपर लिखा है:—
जीवितस्वामिचन्द्रप्रभबिंबं ..... पृष्ठ ७
२. संवत १५०३ में प्रतिष्ठित मूर्ति के ऊपर
जीवितस्वामिश्रीनमिनाथबिंबं पृष्ठ १६३
३. संवत १५१६ में प्रतिष्ठित मूर्त्ति के ऊपर
जीवितस्वामिश्रीशान्तिनाथबिंबं पृष्ठ १६३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

—जैनधातुप्रतिमालेखसंग्रह भा० प्रथम (स्व. बुद्धि-
सागरसूरि जी द्वारा संगृहीत)

४. संवत १५५१ में प्रतिष्ठित मूर्त्ति पर
श्रीअजितनाथजीवितस्वामिबिंबं पृष्ठ ११२

५. संवत १५१० में प्रतिष्ठित मूर्त्ति पर
जीवितस्वामिश्रीशीतलनाथादिजिनचतुर्विंशतिपट्टः पृष्ठ ११६

६. संवत् १४८१ में प्रतिष्ठित मूर्त्ति पर
श्रीजीवितस्वामिश्रीपार्श्वनाथबिंबं पृष्ठ १५२

७. संवत १५३१ में प्रतिष्ठित मूर्त्ति पर
श्रीजीवितस्वामिश्रीविमलनाथबिंबं पृष्ठ १५३

८. संवत् १५३६ में प्रतिष्ठित मूर्त्ति पर
जीवितस्वामिश्रीसुमतिनाथबिंबं पृष्ठ १६६

९. संवत् १५०८ में प्रतिष्ठित मूर्त्ति पर
श्रीविमलनाथजीवितस्वामिबिंबं पृष्ठ १७२

१०. संवत् १५१० में प्रतिष्ठित मूर्त्ति पर
जीवितस्वामिश्रीशांतिनाथबिंबं पृष्ठ १७३

—जैनधातुप्रतिमालेखसंग्रह भाग दूसरा (स्व. बुद्धि-
सागरसूरि जी द्वारा संगृहीत)

११. संवत १५१६ में प्रतिष्ठित मूर्त्ति पर
जीवितस्वामिश्रीअजितनाथप्रमुखपंचतीर्थीबिंबं पृष्ठ ६६

१२. संवत् १५२० में प्रतिष्ठित मूर्त्ति पर
श्रीजीवितस्वामिपंच०श्रीनमिनाथबिंबं पृष्ठ १०२

प्राचीनलेखसंग्रह भाग प्रथम
(स्व. गुरुदेव विजयधर्मसूरिजी द्वारा सम्पादित)

१३. संवत १४२६ में प्रतिष्ठित मूर्त्ति पर
श्रीजीव (वि) तस्वामिश्रीमहावीरचैत्ये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

—प्राचीनजैनलेखसंग्रह भाग दूसरा
(श्रीजिनविजय जी द्वारा सम्पादित)

उपर्युक्त मूर्तियों के लेखों के वर्षों को देखते हुए यह अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है कि उन मूर्तियों की स्थापना प्रभु की विद्यमानता में नहीं हुई थी । वस्तुतः जीवितस्वामी का अभिप्राय है ऐसी प्रतिमा जो जीवित प्रतीत होती हो अथवा जीती जागती प्रतिमा से है । इसलिए नाणा, दीयाणा, नांदिया और ब्राह्मणवाड़ा में जो भी जीवितस्वामी की प्रतिमाएं हैं, वहां भी वस्तुतः अभिप्राय जीती जागती प्रतिमाओं से है । नाणा, दीयाणा, नांदिया और ब्राह्मणवाड़ा के अतिरिक्त महुवा (भावनगर राज्य) में भगवान की एक प्रतिमा है जिसे जीवितस्वामी की प्रतिमा कहा गया हैं, इसकी स्तुति करते हुए श्री विजयपद्मसूरि जी ने लिखा है:—

णिवणंदिवद्धणेणं अडणवइसमाउएण जिट्ठेणं ।
लहुबंधवगुणणेहा—सगकरदेहप्पमाणेणं ॥ ३ ॥
जीवंते य भयंते—कारविया जेण दुण्णि—पडिमाओ ।
सोहइ एगा एसा—अण्णा मरुदेसमज्झंमि ॥ ४ ॥
—श्री जैनसत्यप्रकाश (श्री महावीर-निर्वाण-विशेषांक)
क्रमांक १६—१७, पृष्ठ ३४७

अर्थात् भगवान के बड़े भाई राजा नन्दिवर्धन ने भगवान के जीते जी उन के शरीर के परिमाणानुसार दो प्रतिमाएं बनवाईं । एक तो यहां (महुआ में) है दूसरी मरुदेश (मारवाड़) में है । इस से आगे के श्लोक में इस हेतु इन प्रतिमाओं को जीवितस्वामी की प्रतिमा कहा है ।

ऊपर हमने बताया है कि एक मान्यतानुसार तो जीवितस्वामी की प्रतिमाएं चार स्थानों में हैं । परन्तु आचार्यश्री केवल दो प्रतिमाओं का उस काल में होना मानते हैं । वस्तुतः ये दोनों ही मान्यतायें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्पनाश्रित हैं। यह आश्चर्य है कि भगवान ने जहां इतना विहार किया वहीं क्यों नहीं राजा नन्दिवर्धन ने प्रतिमायें बनवाईं, इस दूर देश में क्यों बनवाईं ?

मुण्डस्थल में महावीरस्वामी के पधारने का एक कारण तो जीवितस्वामी की प्रतिमा का होना बताया जाता है, जिसका प्रतिवाद हम कर चुके हैं। दूसरा कारण उस का महातीर्थ होना बताया जाता है। त्रिविधतीर्थकल्प में ८४ महातीर्थ गिनाये गये हैं। उनमें से कुछ महातीर्थ निम्न हैं।

मोढेरे वायडे खेडे नाणके पल्ल्यां मतुण्डके मुण्डस्थले श्रीमालपत्तने उपकेशपुरे कुण्डग्रामे सत्यपुरे टङ्कायां गङ्गाह्रदे सरस्थाने वीतभये चम्पायां अपापायां पुंड्रपर्वते नन्दिवर्धन कोटिभूमौ वीरः।

विविधतीर्थकल्प (सिंघी ग्रन्थमाला) पृष्ठ ८६

इनमें मुण्डस्थल भी है उपकेशपुर भी है। यदि यही मान लिया जाय कि महातीर्थ वही है जहां वीरप्रभु पधारे थे तो उपकेशपुर तो बाद में बसा है पर वह भी महातीर्थों में गिना गया है। इस से यह स्पष्ट है कि महातीर्थ मानने के अन्य कारण तो हो सकते हैं पर वीरप्रभु के पधारने का कारण नहीं।

मुण्डस्थल (आधुनिक नाम मूंगथला, आबूरोड से पश्चिम में लगभग चार मील दूर) के जिन-मन्दिर के गभारे के ऊपर उत्तरांग में एक लेख खुदा है, वह इस प्रकार है—

(१) पूर्वं छद्मस्थकालेऽर्बुदभुवि यमिनः कुर्वतः सद्विहारं
(२) सप्तत्रिंशे च वर्षे वहति भगवतो जन्मतः कारितार्हच्च
(३) श्रीदेवार्यस्य यस्योल्लसदुपलमयी पुण्यराजेन राज्ञा श्रीके
(४) शी सुप्रतिष्ठः स जयति हि जिनस्तीर्थमुण्डस्थलस्थः।

सं० १४२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५) ..... संवत वीर जन्म ३७

(६) श्रीवीर जन्म ३७ श्रीदेवा जा २ पुत्रधूकारिता

इस का अर्थ इस प्रकार किया जाता है 'श्री महावीरस्वामी छद्मस्थ अवस्था में अर्बुदभूमि में विचरे थे, उस समय अर्थात् भगवान के जन्म से ३७ वें वर्ष में 'देवा' नाम के श्रावक ने यहीं (श्री मुण्डस्थल महातीर्थ में) मंदिर बनवाया, पुण्यपाल राजा ने मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई और श्रीकेशी गणधर ने प्रतिष्ठा की।

१४२६ के दो अन्य इसी स्थान के शिलालेखों से प्रतीत होता है कि श्रीमान ककसूरि के शिष्य श्रीमान् सावदेवसूरि जी ने वि० सं० १४२६ में इस मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया तथा अन्य अनेक प्रतिमाओं, ध्वजदंड, कलश आदि की प्रतिष्ठा की।[1] उसी समय यह उपर्युक्त लेख भी लिखा गया था, ऐसा शिलालेख की

१. मुण्डस्थल में १४२६ के दो शिलालेख हैं। ऊपर निर्दिष्ट शिलालेख इस प्रकार है—

पंक्ति १—सं० १४२६ वर्षे वैशाखसु-
,, २—दि २ स्वौ श्री कोरंटगच्छे
,, ३—श्रीनन्नाचार्यसंताने मुं ड-
,, ४—स्थलग्रामे श्रीमहावीर प्रा-
,, ५—सादे श्रीककसूरिपट्टे श्री-
,, ६—सावदेवसूरिभिः जीर्णो-
,, ७—द्धारः कारितः प्रासादे कलश-
,, ८—दंडयोः प्रतिष्ठा तत्र देवकुलि-
,, ९—कायाश्चतुर्विंशतितीर्थंक-
,, १०—राणां प्रतिष्ठा कृता देवेषु व-
,, ११—नमध्यस्थेष्वन्येष्वपि बिंबेषु च
,, १२—शुभमस्तु श्री श्रमणसंघस्य ॥

—प्राचीन जैनलेखसंग्रह (भाग २), सम्पादक—जिनविजय जी, पृष्ठ १५८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौथी पंक्ति की समाप्ति पर लिखे गये सं० १४२६ से प्रगट है। इसी शिलालेख के आधार पर कहा जाता है कि श्रीवीरप्रभु आबूपर्वत पर पधारे थे।

मुण्डस्थल के इस मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया गया, यह तो एक सर्वसम्मत बात है, इस का समर्थन श्री जिनविजय जी द्वारा सम्पादित प्राचीन जैनलेखसंग्रह भाग २ पृष्ठ १५८–५६ में किया गया है। जैसा कि शिलालेख में समय का निर्धारण कर दिया गया है, तथा अन्य लोगों ने भी माना है यह लेख १४२६ सम्वत् का है। इसी कारण लेख प्राचीनलिपि में न होकर देवनागरी लिपि में है। इसलिए आज से २५०० वर्ष पूर्व घटी घटना के लिए यह शिलालेख प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। दूसरे शब्दों में यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि इस शिलालेख की खुदाई तब नहीं हुई थी जब कि श्रीवीरप्रभु जीवित थे, अथवा श्रीवीरप्रभु की विद्यमानता में यह मन्दिर बना हो ऐसा सिद्ध नहीं होता। लेख की प्राचीनता को सूचित करने के लिए सबल प्रमाण प्राप्त हुए बिना मन्दिर की प्राचीनता को स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसी मन्दिर के रंगमण्डप में ६ चौकी के पश्चिमभाग के दांये पार्श्व में संवत् १२१६ का एक शिलालेख खुदा है, यह लेख ६ स्तम्भों पर एक ही प्रकार से लिखा गया है, उससे प्रतीत होता है कि यह मन्दिर पहले पहल सं० १२१६ में वैशाखवदि ५ सोमवार को बनवाया गया था। लेख इस प्रकार है—

'संवत् १२१६ वेशाखवदि ५ सोमे जासावहुदेविनिमित्तं वीसलेन स्तंभलता कारापिता भक्तिवशादिति।'

यह ध्यान में रखना चाहिये कि कोई लेख प्रामाणिक हैं या नहीं। कोई बात लिखित होने से ही प्रामाणिक नहीं समझी जा सकती। इस सम्बन्ध में हमें कुछ एक दृष्टान्तों को ध्यान में रखना होगा। स्व० गुरुदेव श्रीविजयधर्मसूरि जी द्वारा संपादित ऐतिहासिक रासंग्रह भाग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरे पृष्ठ ५७ में संवत् १५६७ का एक शिलालेख दिया गया है। उस में लिखा है कि एक मन्दिर वल्लभीपुर से नाडलाई में उखाड़ कर लाया गया। इस तथ्य को केवल लिपिबद्ध होने से तो स्वीकार नहीं किया जा सकता।

बहुधा बाद में आने वाले लोग अथवा स्तवनकार भी अपने भावावेश के कारण तथ्यों को अनुपयुक्त ढंग से उपस्थित कर जाते हैं। आबूपर्वत पर देलवाड़े में महामात्य तेजपाल द्वारा खुदाये हुए प्रशस्तिलेख हैं। उनमें से एक पर लिखा है।

श्रीतेजःपाल द्वितीयभार्या महं श्री सुहडादेव्याः श्रेयोऽर्थं एतत् त्रिगदेवकुलिकाखत्तकं श्रीअजितनाथबिंबं च कारितं।

श्री अर्बुदप्राचीनजैनलेखसंदोह (सम्पादक—श्रीजयन्तविजय जी) पृष्ठ ११३

मन्दिर में गूढमंडप के मुख्य द्वार के दोनों ओर सुन्दर खुदाई के काम वाले ताक (गोखले) हैं। इन्हें महामात्य तेजःपाल ने अपनी द्वितीयपत्नी सुहडादेवी के कल्याण के लिये बनवाया था। इन दोनों ताकों को भ्रांतिवशात देराणी—जेठाणी के नाम से पुकारते हैं और यह कहा जाता है कि एक ताक वस्तुपाल की पत्नी का है दूसरा तेजपाल की पत्नी का। इसी प्रकार श्रीवीरविजय जी ने भी अपने स्तवन में लिखा है:

देराणी जेठाणी ना गोखला ॥ दु०॥
लाख अढार प्रमाण ॥ भ०॥
वस्तुपाल तेजपालनी ॥ दु०॥
ए दोइ कांता जाण ॥ भ०॥

श्रीतपागच्छीयपंचप्रतिक्रमणसूत्र अर्थसहित पृष्ठ ५३६

यही दुर्दशा उपर्युक्त शिलालेख की हो रही है। स्थिति यह है कि वह लेख तो १५ वीं शताब्दि का हैं परन्तु बाद में आने वाले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोग उसका सम्बन्ध जोड़ रहे हैं आज से २५०० वर्ष पूर्व की घटना से। इस शिलालेख को प्राचीन सिद्ध न कर सकने के कारण अब यह भी कहा जाने लगा है कि १५ वीं शताब्दि में जब मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया गया था तब प्राचीन लेख की नकल करके पुनः इसे खुदवाया गया था। परन्तु यह केवल कल्पना है, इसे पुष्ट करने के लिये कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। दूसरी बात यह है कि क्या प्राचीन लेख को पढ़ लिया गया था? यदि प्राचीन लेख को पढ़ लिया गया था तब तो उसकी मूललिपि में क्यों नहीं नकल की गई, साथ ही यदि नकल की गई थी तो इस बाद के शिलालेख में उसका वर्णन क्यों नहीं किया गया? इस शिलालेख को पढ़ने से यह बिल्कुल ज्ञात नहीं होता कि यह लेख कहीं से नकल किया गया है। यदि उनके पास मूल प्राचीन शिलालेख होता तो वे अवश्य उसे कहीं सुरक्षित अवस्था में लगवा देते, यों ही नष्ट न होने देते। उस प्राचीन शिलालेख से मन्दिर का गौरव बढ़ता। वस्तुतः ऐसा तो कोई शिलालेख था ही नहीं, उसकी सृष्टि केवल कल्पना के आधार पर की गई है। बहुधा लोग स्वार्थवशात् नई मूर्त्तियां तैयार करवा के उसमें प्राचीन लेख लिख कर उन मूर्त्तियों को बेच देते हैं जिस से यह भ्रम सरलता से फैल सके कि ये प्राचीन मूर्त्तियां हैं। पर ऐसी मूर्त्तियों या लेखों के आधार पर किसी ऐतिहासिक निर्णय पर नहीं पहुँचा जा सकता जब तक कि अन्य पुष्ट प्रमाण उपलब्ध न हों। एवं इसी प्रकार की कल्पनाओं में यह भी एक है कि नांदिया के मन्दिर में शिलालेख सहित मूर्त्तियां मौर्यकाल की हैं।

मुण्डस्थल के मन्दिर के सम्बन्धमें लगभग संवत १३०० में अचल गच्छीय श्रीमहेन्द्रसिंहसूरि द्वारा प्रणीत 'अष्टोत्तरी तीर्थमाला' का प्रमाण दिया जाता है और इसके आधार पर श्री वीरप्रभु का मुण्ड-स्थल में पधारना माना जाता है। परन्तु सूरि जी ने इस सम्बन्ध में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोई सबल प्रमाण नहीं दिया। उनसे लगभग १८०० वर्ष पूर्व मुण्ड-स्थल में वीरप्रभु का आगमन हुआ था यह कैसे माना जा सकता है? वस्तुतः ऐसा प्रतीत होता है कि सूरि जी का मन्तव्य किंवदन्तियों के ऊपर आश्रित है।

सूरिजी ने अष्टोत्तरी तीर्थमाला में लिखा है कि पुण्यराज नाम के महात्मा ने मन्दिर बनवाया था (देखो पृष्ठ २७३)।[1] परन्तु मन्दिर के संवत् १४२६ के उपर्युक्त संस्कृत शिलालेख में 'महात्मा' के स्थान पर 'राजा' शब्द का प्रयोग हुआ है। इस शिलालेख में यह भी लिखा है कि केशीगणधर ने मन्दिर की प्रतिष्ठा की थी। इस लेख के वर्णन से यह प्रगट होता है कि जो स्थापना तीर्थमाला में की गई है, जनता को आकृष्ट करने के लिये उसे तोड़ा मोड़ा गया है, तथा 'महात्मा ने मन्दिर बनवाया' इसके स्थान पर 'राजा पुण्यराज ने प्रतिष्ठा करवाई तथा केशी गणधर ने प्रतिष्ठा की'—ऐसा लिख दिया गया है। इससे यही प्रमाणित होता है कि यह मन्दिर अर्वाचीन है।

श्रीवीरप्रभु चौथे और पांचवें चातुर्मास के बीच लाढ देश में गये थे। कुछ लोग इसे गुजरात में मानते हैं और इसके आधार पर भगवान का गुजरात में पधारना सिद्ध करते हैं। परन्तु लाढ को

---

१. मूलपाठ इस प्रकार है:—

अब्बुअगिरिवरमूले मुंडथलेनंदिरुक्खअहभागे।
छउमत्थकाले वीरो अचलसरीरो ठिओ पडिमं॥
तो पुन्नरायनामा कोई महप्पा जिणरस भत्तीए।
कारइ पडिमं वरिसे सगतीसे वीरजम्माओ।
किंचूणा अट्ठारस वाससयाए य पवरतित्थस्स।
तो मिच्छघणसमीरं थुणेमि मुंडत्थले वीरं।

—पंचप्रतिक्रमणसूत्र (अचलगच्छीय प्रकाशक — श्रावक शा० भीमसिंह माणिक) पृष्ठ ६६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुजरात में मानना अनुपयुक्त है। २५॥ आर्यदेशों में लाढ भी एक है, श्री वीरप्रभु की छद्मस्थावस्था के समय अनार्य गिना जाता था। इसकी राजधानी कोटिवर्ष थी। आजकल बंगाल प्रान्त में दिनाजपुर जिले के अन्तर्गत बानगढ ही प्राचीन कोटिवर्ष है। इस लिये लाढ देश को गुजरात में मानना तथ्यों के विपरीत है।

लाढ के अतिरिक्त एक देश लाट है जो कि गुजरात प्रदेश में है। लाट का प्राकृतरूप लाड है, सम्भवतः लाड और लाढ को एक समझ कर उपर्युक्त गलती की गई है। इस लाड या लाट की राजधानी ईलापुर थी, कुछ समय तक भृगुकच्छ या भरुच भी राजधानी रही थी। लाढ और लाट पर विस्तृत विवेचन हमारी 'प्राचीनभारतवर्षसमीक्षा' में किया गया है। इस प्रदेश में भगवान के आने का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

ऊपर दी गई मान्यताओं के अनुसार भगवान का यदि पृष्ठचम्पा (यहां भगवान ने चौथा चातुर्मास किया था) से सीधा सिरोही की ओर जाना मान लें और सिरोही से पालीताना (सिद्धाचल) की ओर जाना मान लें तो भगवान को आने जाने में २५०० मील से कम नहीं चलना पड़ा होगा। शास्त्रोंमें विहार के स्थान इस प्रकार निर्दिष्ट हैं:—पृष्ठचम्पा (चौथा चातुर्मास), कयंगला, श्रावस्ती, हलिद्दुग, नंगला, आवत्ता, चोरायसन्निवेश, कलंबुकासन्निवेश, राढभूमि (लाढ) पूर्णकलश और भद्दिया। इन स्थान में से तो कोई स्थान गुजरात, मारवाड़ की ओर नहीं है, सब स्थान पूर्व की ओर हैं। यदि इन स्थानों के विहार को भी उपर्युक्त विहार में और जोड़ दें तो २५०० मील की अपेक्षा यह ३५०० मील से भी अधिक हो जायेगा। इतना लम्बा विहार समझ में नहीं आता। सम्भव है यह कहा जाय कि भगवान ने एक रात में १२ योजन का विहार किया था। परन्तु यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं भूलना चाहिए कि प्रथम तो ऐसा विहार कदाचित् और अपवाद स्वरूप ही होता है, प्रतिदिन नहीं। दूसरा रात से अभिप्राय केवलमात्र एक रात्रि से नहीं है अपितु कौटिलीयअर्थशास्त्र के अनुसार एक रात्रि में दिन और रात दोनों का ग्रहण होता है।

इस प्रकार भगवान का चौथे पांचवें चातुर्मास में गुजरात की ओर जाना बुद्धिगम्य नहीं प्रतीत होता। इसके बाद भी १२ वें चातुर्मास के बाद भगवान का आबू की ओर जाना माना जाता है। यह कहा जाता है कि भगवान का छम्माणि (षण्मानी) जाने का उल्लेख है, यहीं भगवान को कीलोपसर्ग हुआ था। षण्मानी का अपभ्रंश 'सानी' माना जाता है जो कि पहले आबूपर्वत पर था, परन्तु किसी कारणवश सानी से चरणपादुकाएं ब्राह्मणवाडा के पास ले आयी गयी; सानी से ब्राह्मणवाड़ा पहाड़ के रास्ते लगभग २० मील दूर है। पर विहारक्रम को देखने से ज्ञात हो जायेगा कि भगवान का १२ वें चौमासे के बाद भी आबू की ओर जाना सम्भव नहीं है। क्योंकि विहार के जितने भी स्थान हैं वे सब पूर्व में हैं, छम्माणि के पूर्वापर स्थान भी पूर्व में हैं। छम्माणि स्वयं भी पूर्व में है इसे दीर्घ-निकाय में 'खानुमत' नाम से स्मरण किया गया है और मगध में बताया गया है। साथ ही पहले की भांति विहार इतना लम्बा हो जाता है कि इतना दूर जाना शक्य नहीं प्रतीत होता।

कुल मिला कर भगवान का पश्चिमी प्रदेश की ओर पांच बार जाना माना गया है:—(१) प्रथम चौमासे में (२) दूसरे चौमासे से पूर्व (३) तीसरे चौमासे से पूर्व (४) चौथे चौमासे के बाद और पांचवें से पूर्व (५) बारहवें चौमासे के बाद। इस सब का हमने ऊपर निराकरण कर दिया है कि गुजरात, मारवाड़, काठियावाड़ में भगवान का जाना बुद्धिगम्य तथा शास्त्रानुकूल नहीं है। स्वयं भगवान ने केवलज्ञान के बाद साधु के विहार के लिए जो सीमा निर्धारण किया है उस से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतीत होता है कि वे केवलज्ञान के बाद भी उस प्रदेश में नहीं गये। छद्मस्थावस्था में तो गये ही नहीं। सीमा-निर्धारण इस प्रकार है:—

कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा पूर्वस्यां दिशि यावदङ्ग-मगधान् 'एतु' विहर्त्तुम्। अङ्गा नाम — चम्पाप्रतिबद्धो जनपदः। मगधा—राजगृहप्रतिबद्धो देशः। दक्षिणस्यां दिशि यावत् कौशाम्बी-मेतुम्। प्रतीच्यां दिशि स्थूणाविषयं यावदेतुम्। उत्तरस्यां दिशि कुणालाविषयं यावदेतुम्। सूत्रे पूर्वदक्षिणादिपदेभ्यस्तृतीयानिर्देशो लिङ्गव्यत्ययश्च प्राकृतत्वात्। एतावत् तावत् क्षेत्रमवधीकृत्य विहर्तुं कल्पते। कुतः? इत्याह एतावत् तावद् यस्मादार्यक्षेत्रम्। नो 'से' तस्य निर्ग्रन्थस्य निर्ग्रन्थ्या वा कल्पते 'अतः' एवंविधाद् आर्यक्षेत्राद् बहिर्विहर्तुम्। 'ततः परं' बहिर्देशेषु अपि सम्प्रतिनृपतिकालादारभ्य यत्र ज्ञानदर्शनचारित्राणि 'उत्सर्पन्ति' स्फातिमासादयन्ति तत्र विहर्त्तव्यम्। 'इतिः' परिसमाप्तौ। ब्रवीमि इति तीर्थंकरगणधरोपदेशेन, न तु स्वमनी-षिकयेति सूत्रार्थः।

बृहत्कल्पसूत्र वृत्तिसहित, विभाग ३, पृष्ठ ६०७

इस के अनुसार साधु या साध्वी को पूर्वदेश में अङ्गमगध तक विहार करना चाहिए, दक्षिण में कौशाम्बी तक, पश्चिम में स्थूणा (कुरुक्षेत्र) तक, उत्तर में कुणालदेश तक।

भगवान ने यह विधान इसलिये किया प्रतीत होता है क्योंकि उन्हें छद्मस्थावस्था में अनार्यदेश में विहार करते हुए बहुत उपसर्ग हुए थे। भगवान का अनुकरण करते हुए अन्यलिंग वहां जायेंगे तथा उन पीड़ाओं को सह न सकेंगे, इसलिये उन प्रदेशों में साधु के जाने का निषेध किया है। केवलज्ञान के बाद भगवान का वीतभयपट्टन की ओर जाने का उल्लेख है। वहां उनके साथ के साधुओं को अत्यन्त कष्ट हुआ था, इसलिये प्रतीत होता है कि उपर्युक्त व्यवस्था

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके बाद ही की गई है। सामान्यरूप से इसका बहुत काल तक पालन भी किया जाता रहा। परन्तु सम्प्रति के काल में इन सीमाओं से बाहर भी साधुओं ने विहार करना प्रारम्भ कर दिया था। बृहत्कल्पसूत्र की उपर्युक्त टीका में भी इस ओर निर्देश किया गया हैं।

भगवान के विहारस्थान

ऊपर हमने भगवान के छद्मस्थकाल के विहार के सम्बन्ध में किये जाने वाले अनुमानों और कल्पनाओं का विवेचन किया है। शास्त्रों में भगवान का विहारक्रम जिस प्रकार से उल्लिखित है वह निम्न-प्रकार से हैं। इस में जहां तक सम्भव हो सका है, विहार के स्थानों का भी निर्णय करने की चेष्टा की गई है।[1]

वर्षावास	विहार-स्थान
	क्षत्रियकुण्डपुर
	ज्ञातखण्डवन
	कर्मारग्राम
	कोल्लागसन्निवेश
	मोराक सन्निवेश
१.	अस्थिकग्राम (वर्धमान गांव) पास में वेगवती नदी
	मोराकसन्निवेश

---

१. स्थाननिर्णय के लिए मुख्यरूप से इन ग्रन्थों की सहायता ली गई है—(१) डिक्शनरी आफ पाली प्रापर नेम्स, दो भाग, श्री जे० पी० मललशेखरकृत (२) भूगोल-भुवनकोषाङ्क (३) जियोग्राफी आफ अर्ली बुद्धिज्म श्रीविमलचरण ला कृत (४) दी जर्नल आफ यू० पी० हिस्टारिकल सोसायटी भाग १५, सं० २, में श्री डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का 'दी जियोग्राफिकल कनटैन्ट आफ दी महामायूरी' वाला लेख (५) प्राचीन तीर्थमाला संग्रह-भाग १. सम्पादक — श्री स्व० गुरुदेव विजयधर्मसूरि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाचाला
दक्षिण वाचाला
स्वर्णवालुका (नदी)
रुप्यवालुका (नदी)
कनकखल आश्रमपद
उत्तर वाचाला
सेयंविया (श्वेतम्बिका)
सुरभिपुर,
गंगानदी
थूणाकसन्निवेश
राजगृह

२. नालन्दा
कोल्लागसन्निवेश
सुवर्णखल
ब्राह्मणगांव

३. चम्पानगरी
कालायसन्निवेश
पत्तकालय
कुमारासन्निवेश
चोराकसन्निवेश

४. पृष्ठचम्पा
कयंगला
श्रावस्ती
हलिद्रुग
नंगला
आवत्ता
चोरायसन्निवेश
कलंबुकासन्निवेश
राढभूमि (अनार्यदेश)—लाढ
पूर्णकलश (अनार्यदेश की
. सीमा पर गांव)

५. भद्दिया
कयलिसमागम
जंबूसंड
तंबायसन्निवेश
कूपियसन्निवेश
वैशाली
ग्रामाक
शालिशीर्ष

६. भद्दियानगरी
मगधभूमि

७. आलभिका
कुंडाकसन्निवेश
मद्दनसन्निवेश (मर्दनसन्निवेश)
बहुसाल
लोहार्गला
पुरिमताल
उन्नाग,
गोभूमि

८. राजगृह
लाढ-वज्रभूमि और शुद्धभूमि
(सुम्हभूमि)—अनार्यदेश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. वज्रभूमि में घूमते फिरते
सिद्धार्थपुर
कूर्मग्राम
सिद्धार्थपुर
वैशाली,
गंडकीनदी
वाणिज्यग्राम

१० श्रावस्ती
सानुलट्ठियसन्निवेश
दृढभूमि–पोलासचैत्य
वालुका
सुभौम
सुच्छेत्ता
मलय
हत्थिसीस
तोसलिगांव
मोसलि
तोसलि
सिद्धार्थपुर
व्रजग्राम
आलभिया
सेयविया
श्रावस्ती
कोशाम्बी
वाराणसी
राजगृह
मिथिला

११. वैशाली
सुंसुमारपुर
भोगपुर
नन्दिग्राम
मेंढियगांव
कोशाम्बी
सुमंगल
सुच्छेता
पालक

१२. चम्पा
जंभियगांव
मेंढिय
छम्माणि
मध्यमा (पावापुरि)
जंभियगांव — इसके बाहर
ऋजुवालुकानदी है
पावापुरि (मध्यमा)

क्षत्रियकुण्डपुर—विदेहदेश की राजधानी वैशाली के निकट यह ग्राम था। वैशाली आजकल बसाढ़ नाम से प्रसिद्ध है। बसाढ़ के निकट वासुकुण्ड है, यही प्राचीन क्षत्रियकुण्डपुर है। इसे नादिका या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नातिका नाम से भी स्मरण किया जाता है। कुछ लोगो ने लिच्छुआड़ को ही क्षत्रियकुण्डपुर माना है तथा लिच्छुआड़ को प्राचीन लिच्छवियों की राजधानी बताया है, ये दोनो स्थापनाएं अयुक्तियुक्त हैं। विस्तार के लिये हमारा 'वैशाली' ग्रन्थ देखो।

कर्मारग्राम—यह स्थान वासुकुण्ड के समीप है। आजकल कुमनछपरागाछी नाम से प्रसिद्ध है। यह लोहारों का गांव था।

कोल्लागसन्निवेश—यह स्थान बसाढ से उत्तरपश्चिम में दो मील की दूरी पर है। आधुनिक नाम कोल्हुआ है। यहीं अशोक का स्तम्भ, स्तूप तथा मर्कटह्रद (आधुनिक नाम रामकुण्ड) हैं।

अस्थिकग्राम—यह वज्जी (विदेह) देश के अन्तर्गत एक ग्राम था और बौद्धसाहित्य में इसे हत्थीगाम नाम से स्मरण किया गया है। यह राजगृह से कुशीनारा वाले मार्ग के बीच में था और वैशाली से दूसरा पड़ाव था। आधुनिक नाम हाथागांव है जो कि मुजफ्फरपुर जिले में है, मुजफ्फरपुर से २० मील पूर्व हाथागांव के पास बागमती नदी बहती है जो कि प्राचीन वेगवतीनदी प्रतीत होती है। यह गांव बसाढ से लगभग ३५ मील है।

सेयंविया (श्वेतम्बिका)—जैनों की दृष्टि से यह केकयार्द्ध की राजधानी थी, बौद्धों की दृष्टि से यह कोशल देश का एक नगर था। सावत्थी से राजगृह की ओर जाने वाले मार्ग पर यह अगला ही पड़ाव था। रायपसेणीसूत्र में इसे सावत्थी के निकट बताया है, फाहियान और बौद्ध ग्रन्थों में भी इसे सावत्थी के निकट बताया है। यह कहा जाता है कि आधुनिक सीतामढ़ी ही प्राचीन श्वेतम्बिका है, और श्वेतम्बिका का अपभ्रंश सीतामढ़ी है। परन्तु जैन और बौद्धग्रन्थों के अनुकूल यह स्थापना नहीं है क्योंकि सीतामढी सावत्थी से लगभग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०० मील की दूरी पर है । अपभ्रंश भी श्वेतम्बिका से सीतामढ़ी नहीं बनता । मि० वॉस्ट ने बसेदिला को ही प्राचीन श्वेतम्बिका माना है जो कि साहेतमाहेत से १७ मील और बलरामपुर से ६ मील है ।

केकय और केकयार्द्ध नामों के कारण कुछ लोग दो केकय देश मानने लगे हैं । परन्तु इसका किसी ग्रन्थ अथवा शास्त्र में उल्लेख नहीं है, न ही किसी अन्वेषक ने इस सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डाला है । ऐसा प्रतीत होता है कि श्वेताम्बी वाला प्रदेश—जिसे बौद्धों ने कोशल में माना है—केकय का उपनिवेश था, इसीलिए यह केकयार्द्ध नाम से प्रसिद्ध हुआ और श्वेताम्बी इस की राजधानी बनी । केकयदेश व्यास और सतलज नदी के बीच का प्रदेश था ।

थूणाकसन्निवेश—यह मल्लदेश में और पटना के उत्तर-पश्चिम में तथा गण्डकी के दक्षिणी किनारे पर था ।

राजगृह—प्राकृत में इसे रायगिह कहते हैं, मगध की राजधानी थी । आजकल का राजगिर नामक स्थान प्राचीन राजगृह है । यह रेलवे स्टेशन है तथा बिहारशरीफ से १५ मील है ।

प्राचीनकाल में यह स्थान अत्यन्त महत्त्व का था, विभिन्न व्यापारिक मार्ग यहीं से होकर जाते थे । तक्षशिला से राजगृह तक का मार्ग १६२ योजन था, यह मार्ग सावत्थी में से होकर जाता था, सावत्थी राजगृह से ४५ योजन थी । कपिलवस्तु से राजगृह ६० योजन था और कुर्शीनारा से २५ योजन था । राजगृह से गंगा ५ योजन थी । राजगृह से नालन्दा १ योजन था ।

नालन्दा—यह आजकल बडगांव नाम से प्रसिद्ध है । राजगिर से ८ मील है । बिहारशरीफ से राजगिर की ओर जाते हुए बीच में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नालन्दा नामक स्टेशन है। किसी समय यहां बौद्धों का बहुत बड़ा विश्वविद्यालय था।

कोल्लागसन्निवेश—वैशाली के निकटस्थ कोल्लागसन्निवेश से यह भिन्न स्थान है। भगवतीसूत्र के ६६२ पृष्ठ में इस के सम्बन्ध में बताया है कि "तीसे णं नालंदाए बाहिरियाए अदूरसामंते एत्थ णं कोल्लाए नामं सन्निवेसे होत्था"। अर्थात् नालन्दा के निकट में कोल्लागसन्निवेश था।

चम्पा—प्राचीनकाल में यह अङ्गदेश की राजधानी थी। आजकल पूर्वदेश में भागलपुर के निकट पूर्वदिशा में जो चम्पानगर है वही प्राचीन चम्पानगरी हैं। इसके पास चम्पा नाम की नदी बहती है।

कयंगला—मध्यदेश की पूर्वी सीमा पर था। रामपालचरित में इसका उल्लेख है। यह स्थान राजमहल जिले में है। श्रावस्ती के पास भी एक कयंगला है यह उससे भिन्न है।

श्रावस्ती—आजकल राप्ती के किनारे का साहेत-माहेत ही प्राचीन श्रावस्ती है। प्राचीनकाल में कोशल की राजधानी थी। यह साकेत से ६ योजन, राजगृह से उत्तर-पश्चिम में ४५ योजन, संकस्स से ३० योजन, तक्षशिला से १४७ योजन, सुप्पारक से १२० योजन थी। राप्ती का प्राचीन नाम अचिरवती या अजिरवती है, जैनसूत्रोंमें इसे इरावदी कहा है।

हलिद्दग—बौद्धग्रन्थों में इस का हलिद्दवसन नाम से उल्लेख है। यह कोलियदेश में था, कोलियदेश की राजधानी रामगाम थी। यह प्रदेश शाक्यदेश के पूर्व में था और दोनों देशों के बीच रोहिणी-नदी बहती थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नंगला—यह कोशल में था, यहां वेदशास्त्र के बड़े बड़े पण्डित रहते थे। बौद्धसाहित्य में यह इच्छानंगल नाम से प्रसिद्ध है।

लाढ—इस की राजधानी कोटिवर्ष थी। आधुनिक बानगढ़ ही प्राचीन कोटिवर्ष है। इसके दो भाग थे उत्तरराढ और दक्षिण-राढ, इन दोनों के बीच अजयानदी बहती थी। यह गुजरातदेशी लाट से भिन्न देश है। यह प्रदेश बंगाल में गंगा के पश्चिम में था, आजकल के तामलुक, मिदनापुर, हुगली और बर्दवान जिले इस प्रदेश के अन्तर्गत थे। मुर्शिदाबाद जिले का कुछ भाग इस की उत्तरी सीमा के अन्तर्गत था।

भद्दिया—अङ्गदेश का एक नगर था। भागलपुर से ८ मील दक्षिण में स्थित भदरिया गांव प्राचीन भद्दिया है।

जम्बूसंड—यह गांव वैशाली से कुशीनारा वाले मार्ग पर अम्बगांव और भोगनगर के बीच में था। वैशाली से चौथा पड़ाव था।

वैशाली—वर्तमान बसाढ़ प्राचीन वैशाली है। यह स्थान पटना से उत्तर की ओर २७ मील पर है। बौद्धग्रन्थों में वैशाली से गंगा की दूरी ३ योजन बताई गई है। विशेष विवरण के लिये हमारा 'वैशाली' ग्रन्थ देखो।

मगध—श्रीमहावीरस्वामी के समय में मगध के पूर्व चम्पा-नदी, दक्षिण में विन्ध्यपर्वत, पश्चिम में सोननदी, और उत्तर में गंगानदी थी। यही इस देश की सीमा थी। इस की राजधानी राजगृह थी।

आलभिका—यह सावत्थी से राजगृह जाने वाली सड़क पर था। सावत्थी से यह ३० योजन था और बनारस से सम्भवतः १२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योजन। बौद्धों ने इसे आलवी लिखा है। कनिंघाम और हार्नल के विचारानुसार युक्तप्रान्त में उन्नाव जिले का नवलगांव ही प्राचीन आलभिका है और नन्दलाल दे के अनुसार इटावा से २७ मील दूर उत्तरपूर्व में ऐरवा नामक गांव।

मदन—इस का उल्लेख महामायूरी में मिलता है, वहां पंक्ति इस प्रकार हैः 'मर्दने मण्डपो यत्नो'। कईयों ने मण्डप को स्थानवाची मानकर मर्दन को व्यक्तिवाची माना है, यह ठीक नहीं है। मर्दन स्थानवाची है और मण्डप व्यक्तिवाची। महामायूरी में वर्णित मर्दन और श्रीमहावीरस्वामी के विहार का मदन एक ही है।

पुरिमताल—आजकल का प्रयाग प्राचीन पुरिमताल है।

वज्रभूमि—लाढदेश के दो भाग किये जाते थे: वज्रभूमि और सुम्हभूमि। यहां हीरों की खान होने से यह वज्रभूमि नाम से प्रसिद्ध था। विशेष के लिये हमारी 'प्राचीनभारतवर्षसमीक्षा' देखो।

वाणिज्यग्राम—आजकल यह बनियागांव नाम से प्रसिद्ध है, बसाढ के निकट एक गांव है।

तोसलि—आजकल का धौलिस्थान है यहां अशोक का लेख है। खण्डगिरि-उदयगिरि के निकट है।

मोसलि—कलिंगदेश का एक विभाग था भरत के नाट्य-शास्त्र में इसका उल्लेख है।

कौशाम्बी—वत्स अथवा वंश की राजधानी थी। आज कल कोसम नाम से यह प्रसिद्ध है जो कि इलाहाबाद से ३० या ३१ मील हैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और यमुना के किनारे है, बनारस से १३ योजन है। एक महाशय ने यहां तक प्रतिपादन किया था कि कौशाम्बी यमुना के किनारे ही नहीं है।

वाराणसी--काशीदेश की राजधानी थी। पसेनदि के राज्य-काल में यह देश कोशल में सम्मिलित कर लिया गया था।

मिथिला--विदेह देश की राजधानी थी। चम्पा से १६ योजन दूर था। आजकल यह जनकपुर नाम से प्रसिद्ध है जो कि नैपाल राज्य में है।

सूसुमारपुर--यह सूसुमारगिरि प्रतीत होता है, भग्ग (भंगी) देश की राजधानी थी। भग्गदेश वैशाली और सावत्थी के बीच में ही था। अनुमान होता है कि इसका दूसरा नाम पावा था।

भोगपुर--बौद्धग्रन्थकारों ने इसे भोगनगर लिखा है। वैशाली से कुशीनारा वाले मार्ग पर यह पांचवा पड़ाव था।

छम्माणि--मगधदेश में था, बौद्धों ने इसे खानुमत लिखा है।

मध्यमा--यह मध्यदेश की पावापुरी है, मल्लदेश की पावापुरी से भिन्न है। यहीं वीरप्रभु का निर्वाण हुआ था। यह बिहार-शरीफ से सात मील है। स्वर्गीय हरमन जैकोबी ने भी अपने सन् ३० वाले जर्मनभाषा के लेख में इसी पावापुरी को वीरप्रभु का निर्वाण-स्थान माना है।

पावा तीन मानी जाती हैं एक मल्लों की, दूसरी भंगी (भग्ग) की राजधानी, तीसरी मध्यम पावा। मल्लदेश की तथा भग्ग देश की पावा के बीच में होने कारण कुछ लोग इसे मध्यमपावा मानते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं, परन्तु यह ठीक नहीं है। अपितु मध्यमदेश में होने के कारण, मध्यमपावा कहलाती थी और मध्यमपावा उपर्युक्त दो पावाओं के बीच में न होकर एक त्रिभुजरूप में स्थित थी।

ऋजुवालुका—पावा मध्यमा से १२ योजन दूर थी, जंभियगाँव के निकट थी जहां भगवान को केवलज्ञान हुआ था। इसके विषय में स्व० गुरुदेव विजयधर्मसूरिजी ने जो कल्पना ऐतिहासिक तीर्थमाला संग्रह भाग १ की प्रस्तावना में की है हमें वह ठीक ही जंचती है, अन्य कोई दृढ़ प्रमाण प्राप्त होने पर उस कल्पना पर विचार किया जा सकता है। ठाणांगसूत्र में गंगा की जो पांच सहायक नदियों के नाम का उल्लेख है उसमें आजी नहीं अपितु 'आदी' है। जिस नदी को आजकल पुनपुन कहते हैं जो कि पटना के पास फतुआ में गंगा-नदी में मिल गई है इसी का नाम आदी गंगा है। गयाधाम के प्रत्येक यात्री का यह कर्तव्य होता है कि वह गया जाते समय इस के तट पर सिर मुँड़ाये और इसके जल में स्नान करे (देखो गंगा अंक भूगोल पृष्ठ २१)।

———

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैशाली

अति प्राचीनकाल से वैशाली अपने गणतन्त्र संघ के लिये प्रसिद्ध है। जैनशास्त्रों में इस गणतन्त्र के सम्बन्ध में बहुत सी ज्ञातव्य बातें दी गई हैं। उनके आधार पर बहुत सी नूतन बातों का इस ग्रन्थ में समावेश किया गया है, उन्हीं के आधार पर वैशाली का स्थान-निर्णय किया गया है।

जैनग्रन्थों के अनुसार इसी वैशाली के निकटस्थ ग्राम क्षत्रियकुण्डपुर में भगवान महावीर का जन्म हुआ था। अब तक की इस मान्यता का प्रतिवाद किया गया है कि भगवान की जन्मभूमि लिच्छूआड़ के पास है अथवा नालन्दा के निकट है। प्राचीन वर्णनों के आधार पर इस ग्रन्थ में यह प्रतिपादित किया गया है कि आधुनिक बसाढ़ (मुजफ्फरपुर जिला) के निकटस्थ ग्राम बासुकुण्ड ही प्राचीन क्षत्रियकुण्डपुर है।

जर्मन विद्वान हरमन जैकोबी तथा डा० हारनल ने क्षत्रियकुण्डपुर को वैशाली का एक मुहल्ला बताया है, यह भी नितान्त अयुक्तियुक्त है। इसी प्रकार इन यूरोपियन विद्वानों द्वारा की गई अन्य भूलों का भी समाधान किया गया है।

ल्य १)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राचीन भारतवर्ष-समीक्षा

डाक्टर त्रिभुवनदास लहेरचन्द शाह ने 'प्राचीन-भारतवर्ष' नामक ग्रन्थ गुजराती में पांच भागों में और अंग्रेजी में चार भागों में लिखा है। इस में स्थल स्थल पर भ्रान्तिजनक और असत्य स्थापनाएं करके पाठकों को भ्रम में डालने का प्रयत्न किया है। इन मान्यताओं के निवारणार्थ तथा ऐतिहासिक तथ्यों के प्रकाशनार्थ इतिहासतत्वमहोदधि जैनाचार्य श्री-विजयेन्द्रसूरीश्वर जी महाराज ने हिन्दी में 'प्राचीन-भारत-वर्ष-समीक्षा' नाम से एक आलोचनात्मक ग्रन्थ लिखा है। विषय-सूचि इस प्रकार है:—

१. चक्रवर्ती सम्राट् खारवेल २. खारवेल आजीवक ? ३. पुष्पपुर ४. पाणिनी की जन्मभूमि ५. पाणिनी अनार्य ६. दन्ती चाणक्य ७. जैनधर्म संस्थापक महावीर ८. सरस्वती चित्र ९. तिस्सा या तिष्य १० मगध या मांगध ११. कंस का टीला १२. अमोहिनी १३. शौरिपुर या चोरवाड १४. प्राचीन भूगोल १५. कल्की का जन्म १६. जैनमन्दिर-भंजक कल्की १७. पाटलि-पुत्र के स्तूप १८. उषवदात अभिलेख १९. अयोध्या या आयुद्धास २०. परिशिष्टपर्व २१. लाट या लाढ २२. वज्रभूमि २३. चम्पा नगरी और अङ्गदेश २४. पुष्यमित्र २५. महासेन वन २६. सांची का दान २७. धनभूति का लेख २८. आन्ध्रवंश और आन्ध्रदेश २९. सप्तपुरी ३०. राजा प्रसेनजित् और प्रदेशी ३१. मायादेवी का स्वप्न ३२. पावापुरी।

मूल्य २॥)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org